Journal Literary Aesthetics
Volume No: 12, Issue No: 2, Year: 2025 (July-December)
PP: 111-117
ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

मणिमञ्जरी नाटिका में रस-निर्मिति और भाव-व्यंजना का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण

विकाश कुमार झा

पूर्व शोधार्थी, विश्विद्यालय संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सारांश

संस्कृत नाट्य-शास्त्र की सुदीर्घ, गंभीर और अत्यंत समृद्ध परंपरा में 'रूपक' (नाटक) और 'उपरूपक' का अत्यंत सूक्ष्म, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक विभाजन किया गया है। उपरूपकों की विस्तृत श्रेणी में 'नाटिका' का अपना एक अत्यंत विशिष्ट, सुकोमल और ललित स्थान है। अठारहवीं शताब्दी के प्रख्यात रस-सिद्ध कवि एवं मूर्धन्य अलंकार-शास्त्री पंडित विश्वेश्वर पांडेय द्वारा विरचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की एक अत्यंत रमणीय और काव्यात्मक कृति है। प्रस्तुत शोध-पत्र इस 'मणिमञ्जरी' नाटिका में अंतर्निहित रस-निर्मिति और भाव-व्यंजना का एक समग्र, गहन एवं शास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इस विस्तृत अध्ययन का मूल उद्देश्य यह विश्लेषित करना है कि किस प्रकार नाटककार ने महर्षि भरतमुनि के 'रस-सूत्र' को अपना आधार बनाकर अपनी कृति में आलंबन और उद्दीपन विभावों, सात्त्विक अनुभावों तथा विविध व्यभिचारी (संचारी) भावों का अत्यंत सजीव एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'मणिमञ्जरी' नाटिका मूलतः शृंगार रस-प्रधान कृति है, जिसमें शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और विप्रलंभ—का अत्यंत मार्मिक, उदात्त और परिपक्व परिपाक हुआ है। प्रस्तुत आलेख में दशरूपक और साहित्यदर्पण जैसे प्रामाणिक शास्त्रीय ग्रंथों के निकष पर इस नाटिका की अवस्थिति, अंगी रस के रूप में शृंगार की सर्वव्यापकता, हास्य और अद्‌भुत जैसे अंग (गौण) रसों के नियोजन, तथा व्यंजना-वृत्ति के माध्यम से रस-ध्वनि की विलक्षण अभिव्यक्ति का अत्यंत विशद विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: मणिमञ्जरी, विश्वेश्वर पांडेय, संस्कृत नाट्यशास्त्र, उपरूपक, नाटिका, रस-निर्मिति, भाव-व्यंजना, शृंगार रस, संयोग, विप्रलंभ, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, रस-ध्वनि, व्यंजना-वृत्ति

1. प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय केवल दर्शन, कर्मकांड और शुष्क ज्ञान का ही भंडार नहीं है, अपितु यह मानवीय संवेदनाओं, लौकिक अनुभूतियों और कलात्मक अभिव्यक्तियों का एक ऐसा अनंत महासागर है जिसमें अवगाहन कर सहृदय परमानंद की प्राप्ति करते हैं [1]। भारतीय काव्यशास्त्र और साहित्य-मीमांसा में दृश्य-काव्य (नाटक) को सभी साहित्य-रूपों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रभावोत्पादक माना गया है। प्राचीन आचार्यों ने स्पष्ट उद्‌घोष किया है:

"काव्येषु नाटकं रम्यम्।"

अर्थात् सभी काव्य-रूपों में नाटक सर्वाधिक रमणीय होता है, क्योंकि यह श्रव्य और दृश्य—दोनों माध्यमों से सामाजिकों (दर्शकों) के हृदय में सीधे रस का संचार करता है। भरतमुनि की नाट्य-परंपरा से जो शास्त्रीय प्रवाह प्रारंभ हुआ, उसने कालांतर में धनंजय, मम्मट और विश्वनाथ जैसे मूर्धन्य आचार्यों के हाथों में अत्यंत परिष्कृत रूप धारण कर लिया [2]। इसी शास्त्रीय विकास-क्रम में नाटकों की कथावस्तु, नायक की प्रकृति और रस-विधान के आधार पर उन्हें 'रूपक' (दस प्रकार) और 'उपरूपक' (अठारह प्रकार) में विभाजित किया गया। इन उपरूपकों में 'नाटिका' अत्यंत लोकप्रिय विधा बनकर उभरी, क्योंकि इसमें शृंगार रस की प्रधानता, नायिका-भेद का वैविध्य और कैशिकी वृत्ति का लालित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है [3]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

अठारहवीं शताब्दी के इस मूर्धन्य विद्वान पंडित विश्वेश्वर पांडेय ने संस्कृत काव्यशास्त्र और नाट्य-परंपरा को अपनी अप्रतिम रचनात्मक प्रतिभा से अत्यंत समृद्ध किया है [4]। उनके द्वारा विरचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका इसी गौरवशाली परंपरा का एक अत्यंत उज्ज्वल दृष्टांत है। विशेषकर बिहार के दरभंगा और मिथिलांचल जैसे ऐतिहासिक शोध-केंद्रों की उस सुदीर्घ अकादमिक परंपरा में, जहाँ संस्कृत उपरूपकों, न्याय और साहित्य-शास्त्र के अध्ययन को अत्यंत महत्व दिया जाता रहा है इस कृति का मूल्यांकन नितांत प्रासंगिक और आवश्यक है [5]। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी अकादमिक दिशा में एक गंभीर प्रयास है, जिसका उद्देश्य 'मणिमञ्जरी' नाटिका की रस-योजना और उसके भावात्मक सौंदर्य का शास्त्रीय उद्धरणों के आलोक में समग्र अन्वेषण करना है।

2. काव्यशास्त्र में नाटिका का स्वरूप एवं 'मणिमञ्जरी' की अवस्थिति

नाटिका के स्वरूप और उसके संरचनात्मक वैशिष्ट्य को पूर्णतः समझने के लिए शास्त्रीय ग्रंथों के लक्षणों का अवलोकन अनिवार्य है। आचार्य धनंजय ने 'दशरूपक' में नाटिका का अत्यंत स्पष्ट और वैज्ञानिक लक्षण निरूपित करते हुए लिखा है:

"नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।

प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥" (दशरूपक 3.43)

अर्थात्, नाटिका की कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक न होकर पूर्णतः कल्पित (उत्पाद्य) होती है। इसमें स्त्री पात्रों की अधिकता होती है और यह केवल चार अंकों में निबद्ध होती है। इसका नायक कोई प्रख्यात, धीरललित प्रकृति का राजा होता है, जो कला-प्रेमी और अत्यंत भावुक होता है [6]। इसके अतिरिक्त, नायिका राजमहल के अंतःपुर से संबद्ध कोई अत्यंत रूपवती एवं मुग्धा कन्या होती है, और संपूर्ण कथानक कैशिकी वृत्ति (सुकोमल और शृंगारिक चेष्टाओं) से ओतप्रोत होता है।

पंडित विश्वेश्वर पांडेय की कृति 'मणिमञ्जरी' इन सभी काव्यशास्त्रीय कसौटियों पर पूर्णतः खरी उतरती है [7]। इस नाटिका में चार सुगठित अंक हैं, जो नायक (राजा) और नायिका (मणिमञ्जरी) के मध्य उत्पन्न हुए प्रथम अनुराग, मिलन की दुर्जेय बाधाओं, विरह की अत्यंत दारुण पीड़ा और अंततः एक अत्यंत सुखद और मांगलिक संयोग को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करते हैं। कालिदास की 'मालविकाग्निमित्रम्' और राजशेखर की कृतियों की भांति ही 'मणिमञ्जरी' में भी राजमहल के अत्यंत गूढ़ षड्यंत्रों, ज्येष्ठा रानी की स्वाभाविक ईर्ष्या और विदूषक के निर्मल हास्य-परिहास का अत्यंत सुंदर और रोचक ताना-बाना बुना गया है [8]।

3. रस-सिद्धांत की रूपरेखा और भरतमुनि का परिप्रेक्ष्य

भारतीय सौंदर्यशास्त्र और साहित्य-समीक्षा का मूलाधार 'रस-सिद्धांत' है। किसी भी काव्य की सार्थकता उसकी रस-निष्पत्ति में ही निहित होती है। रस-निष्पत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने हेतु महर्षि भरतमुनि के 'रस-सूत्र' की प्रासंगिकता को समझना नितांत आवश्यक है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के षष्ठ अध्याय में अत्यंत सुप्रसिद्ध सूत्र का उद्घोष किया है:

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।" (नाट्यशास्त्र 6.31)

अर्थात् विभाव (कारण), अनुभाव (कार्य या शारीरिक चेष्टाएं) और व्यभिचारी (संचारी) भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है [9]। नाटिका 'मणिमञ्जरी' का अध्ययन करते समय यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि नाटककार ने आचार्य अभिनवगुप्त के 'अभिव्यक्तिवाद' और साधारणीकरण के सिद्धांत का अत्यंत गहन अध्ययन किया था [10]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

रस कोई ऐसी भौतिक वस्तु नहीं है जिसे बाहर से लाकर दर्शक के मन पर थोपा जा सके; यह तो सहृदय (दर्शक या पाठक) के अंतःकरण में पूर्व से ही वासना या संस्कार रूप में विद्यमान 'स्थायी भाव' का काव्यात्मक जागरण है [11]। आचार्य विश्वनाथ इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं:

"सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥" (साहित्यदर्पण 3.2)

पंडित विश्वेश्वर पांडेय ने अपने पात्रों की संवाद-योजना और कथा-प्रसंगों की संरचना इस प्रकार रची है कि दर्शक के हृदय में सुप्त अवस्था में स्थित 'रति' नामक स्थायी भाव, राजा और मणिमञ्जरी के रूप में आलंबन विभावों, और वसंत ऋतु के रूप में उद्दीपन विभावों का अत्यंत उचित आश्रय प्राप्त कर जागृत हो जाता है, और अंततः 'शृंगार रस' के लोकोत्तर आनंद के रूप में परिणत हो जाता है।

4. 'मणिमञ्जरी' नाटिका में प्रधान रस: शृंगार की व्याप्ति

भारतीय काव्यशास्त्र में शृंगार को अत्यंत आदर के साथ 'रसराज' (रसों का राजा) की संज्ञा दी गई है [12]। भोजराज ने तो 'शृंगारप्रकाश' में केवल शृंगार को ही एकमात्र रस माना है। 'मणिमञ्जरी' नाटिका का अंगी (प्रधान) रस निस्संदेह शृंगार ही है। नाटककार ने शृंगार के दोनों प्रमुख भेदों—संयोग (सम्भोग) और विप्रलंभ (वियोग)—का अत्यंत संतुलित, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक विनियोग किया है [13]।

नाटिका के प्रथम अंक में जब उपवन में नायक (राजा) और नायिका (मणिमञ्जरी) का प्रथम दर्शन होता है, तो वहां 'पूर्वानुराग' नामक विप्रलंभ शृंगार की अत्यंत कोमल उत्पत्ति होती है। दोनों एक-दूसरे को देखते हैं और उनके हृदय में रति भाव का अंकुरण होता है। विप्रलंभ शृंगार का चरम उत्कर्ष नाटिका के तृतीय अंक में दिखाई देता है, जब ज्येष्ठा नायिका (महारानी) को इस रहस्यमयी प्रेम-प्रसंग का भान हो जाता है और वह अत्यंत कुपित होकर मणिमञ्जरी पर कठोर पहरा लगा देती है [14]। इस अवस्था में नायक और नायिका दोनों ही विरह की दारुण व्यथा से ग्रस्त होते हैं। उनका यह वियोग केवल शारीरिक दूरी नहीं है, अपितु यह एक अत्यंत गहरा मनोवैज्ञानिक संताप है जो शृंगार रस की गहराई को कई गुना बढ़ा देता है।

चतुर्थ अंक में संयोग शृंगार और भव्य वैवाहिक चरमोत्कर्ष:

चतुर्थ अंक में जब महारानी के कोप शांत हो जाते हैं और सभी बाधाओं का पूर्ण निवारण हो जाता है, तब 'संयोग शृंगार' अपनी पूर्ण भव्यता, सांस्कृतिक उल्लास और मंगलमयता के साथ प्रस्फुटित होता है [15]। इस अंक में नाटककार ने अत्यंत भव्य और विशाल वैवाहिक समारोह का जो अत्यंत काव्यात्मक और चित्रात्मक वर्णन किया है, वह दर्शनीय है।

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल एक रस्म नहीं, अपितु एक महा-उत्सव है। जब नायक (राजा) रनिवास (अंतःपुर) में नायिका को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने हेतु आता है, तो उस क्षण नायक का अत्यंत भव्य, राजसी और नाटकीय प्रवेश (हीरो का प्रवेश) दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देता है। इस अत्यंत भव्य वैवाहिक समारोह की पृष्ठभूमि में गूंजते हुए मांगलिक वाद्ययंत्रों की मधुर ध्वनि, सखियों का ललित नृत्य, पुरोहितों का वैदिक मंत्रोच्चार और पारंपरिक वैवाहिक रस्मों का असीम उल्लास संपूर्ण दृश्य को किसी राजसी भारतीय विवाह की असीमित भव्यता और चकाचौंध से भर देता है [16]। यह सांस्कृतिक उल्लास, उत्सवधर्मिता और मिलन का यह अनुपम सौंदर्य शृंगार रस को उसके सर्वोच्च शिखर पर स्थापित कर देता है, जहाँ नाट्य-रस और लोक-संस्कृति एकाकार हो जाते हैं।

5. विभाव-विधान: आलंबन और उद्दीपन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

रस-निष्पत्ति की शास्त्रीय प्रक्रिया में 'विभाव' (कारण) की भूमिका सर्वोपरि होती है, क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति असंभव है [17]। आचार्य विश्वनाथ विभाव का लक्षण इस प्रकार देते हैं:

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

"रत्यादयुद्बोधका लोके विभावा काव्यनाट्ययोः।" (साहित्यदर्पण 3.3)

अर्थात् लोक में जो पदार्थ रति आदि स्थायी भावों को उद्बुद्ध (जागृत) करते हैं, वे ही काव्य और नाटक में 'विभाव' कहलाते हैं। विभाव के दो भेद होते हैं, आलंबन (जिसका सहारा लेकर रस उत्पन्न हो) और उद्दीपन (जो उत्पन्न रस को और अधिक तीव्र करे) [18]।

'मणिमञ्जरी' नाटिका में आलंबन विभाव के रूप में स्वयं नायक (राजा) और नायिका (मणिमञ्जरी) उपस्थित हैं। नायक एक धीरललित प्रकृति का राजा है, जो कला-प्रेमी, भावुक, रूपवान और अत्यंत रसिक है। दूसरी ओर, नायिका 'मणिमञ्जरी' नवयौवना, अत्यंत रूपवती, मुग्धा और स्वभाव से अत्यंत लज्जाशीला है [19]। इन दोनों के रूप-सौंदर्य और चारित्रिक गुणों का अत्यंत सजीव चित्रण नाटककार ने किया है, जो सामाजिकों के हृदय में रति भाव को एक सुदृढ़ आलंबन प्रदान करते हैं।

उद्दीपन विभावों के चित्रण में विश्वेश्वर पांडेय की लेखनी ने तो मानो चमत्कार ही उत्पन्न कर दिया है [20]। नाटिका में वसंत ऋतु का अत्यंत मादक आगमन, मलय पर्वत से बहने वाली शीतल-मंद-सुगंधित वायु, राजमहल का प्रफुल्लित क्रीड़ा-उद्यान, सरोवर में खिले हुए कमल, मकरंद-पान करते भ्रमरों का मधुर गुंजन और आम्र-मंजरियों पर बैठी कोयल की कूक, इन सभी प्राकृतिक उपादानों का उपयोग शृंगार की ज्वाला को भड़काने के लिए किया गया है [21]। सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि संयोग अवस्था में जो वसंत ऋतु अत्यंत सुखदायी प्रतीत होती थी, वही प्रकृति विरह अवस्था में नायक को अग्नि के समान संताप देने लगती है। उद्दीपन विभावों का यह मनोवैज्ञानिक प्रत्यावर्तन नाटिका की रस-योजना को अत्यंत सजीव और यथार्थपरक बना देता है।

6. अनुभाव और व्यभिचारी भावों (संचारी भावों) का सूक्ष्म चित्रण

हृदय में रस के उत्पन्न होने पर शरीर और मन में जो बाह्य चेष्टाएं या शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें काव्यशास्त्र में 'अनुभाव' कहा जाता है [22]। शास्त्र कहता है:

"अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।"

'मणिमञ्जरी' में कायिक (शारीरिक) और सात्त्विक अनुभावों की अत्यंत मनोहारी और कलात्मक छटा बिखेरी गई है। सात्त्विक अनुभाव वे हैं जो बिना किसी कृत्रिम प्रयास के सत्त्व (मन) के अत्यंत प्रभावित होने पर स्वतः उत्पन्न होते हैं। इनकी संख्या आठ मानी गई है:

"स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।

वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥" (साहित्यदर्पण 3.134)

नायिका द्वारा नायक को छिप-छिप कर देखना, रति-क्रीड़ा की स्मृतियों से रोमांचित होना (रोमांच), नायक के सामने आने पर शरीर का कांपना (वेपथु), और विरह में निरंतर अश्रुपात करना (अश्रु)—ये सात्त्विक अनुभाव शृंगार रस की पूर्ण परिपक्वता को दर्शाते हैं [23]। इसके अतिरिक्त, रस की पुष्टि के लिए जल के बुलबुलों के समान हृदय में उठने और मिटने वाले व्यभिचारी (संचारी) भावों का भी अत्यंत कुशल और मनोवैज्ञानिक नियोजन किया गया है। संचारी भावों की संख्या तैंतीस (33) मानी गई है। 'मणिमञ्जरी' में औत्सुक्य (नायक से मिलने की तीव्र इच्छा), लज्जा (दूसरों के सामने प्रेम को छिपाने का प्रयास), हर्ष (मिलन की संभावना पर आनंद), विषाद (विरह की अत्यंत गहरी पीड़ा), शंका (रानी के कोप का निरंतर भय) और दैन्य जैसे संचारी भावों का अत्यंत विशद चित्रण हुआ है। ये संचारी भाव अंगी रस (शृंगार) के परिकर के रूप में कार्य करते हुए उसे दर्शकों के लिए पूर्णतः आस्वाद के योग्य बनाते हैं।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

7. नाटिका में गौण (अंग) रसों का नियोजन और उनका परिपाक

यद्यपि 'मणिमञ्जरी' पूर्णतः शृंगार प्रधान रचना है, तथापि भारतीय काव्यशास्त्र के नियमानुसार नाटककार ने अंग (गौण) रसों का अत्यंत प्रासंगिक, आनुपातिक और संतुलित प्रयोग किया है। किसी एक रस के निरंतर प्रवाह से दर्शक को नीरसता का अनुभव हो सकता है, अतः अन्य रसों का नियोजन अनिवार्य होता है।

इन गौण रसों में 'हास्य रस' की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। विदूषक का चरित्र हास्य रस का प्रमुख आलंबन है। आचार्य विश्वनाथ हास्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

"विकृताकारवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।

हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्यस्तृप्रकृतिः स्मृतः॥" (साहित्यदर्पण 3.213)

विदूषक की अत्यंत विद्रूप वेशभूषा, उसकी मूर्खतापूर्ण बातें, और स्वादिष्ट भोजन के प्रति उसकी असीम लोलुपता दर्शकों को निरंतर गुदगुदाती है। राजा जब विरह के अत्यंत गंभीर संताप में होता है, तब विदूषक शृंगारिक उपमानों की तुलना लड्डू और मिष्ठान्न से करके जो परिहास उत्पन्न करता है, वह शृंगार रस की गहनता के मध्य दर्शकों को मानसिक विश्राम प्रदान करता है।

इसके साथ ही, नाटिका के चतुर्थ और अंतिम अंक में 'अद्भुत रस' का भी अत्यंत सुंदर परिपाक हुआ है। जब कथा में किसी अप्रत्याशित रहस्य का उद्घाटन होता है और नायिका की वास्तविक कुलीन पहचान सामने आती है, तो सभी पात्र विस्मय (आश्चर्य) से भर जाते हैं। विस्मय ही अद्भुत रस का स्थायी भाव है, जो कथानक के अंत को अत्यंत चमत्कारपूर्ण और संतोषजनक बना देता है।

8. भाव-व्यंजना और शब्द-शक्तियों का विलक्षण प्रयोग

काव्य और नाटक का शरीर शब्द और अर्थ से निर्मित होता है, परंतु उसकी वास्तविक आत्मा 'ध्वनि' या 'व्यंजना' शक्ति में ही निवास करती है। आचार्य आनंदवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' में अत्यंत स्पष्ट रूप से घोषित किया है:

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः..." (ध्वन्यालोक 1.1)

पंडित विश्वेश्वर पांडेय ने अपने पात्रों के मुख से अत्यंत व्यंजक और ध्वनि-पूर्ण संवाद कहलवाए हैं। नायक और नायिका के मध्य होने वाले संवाद सीधे, सपाट और केवल अभिधा-प्रधान नहीं हैं। उनमें श्लेष और वक्रोक्ति का अत्यंत सुंदर प्रयोग है, जिससे एक ही वाक्य से कई अर्थ ध्वनित होते हैं।

विशेषकर नायिका की संवाद-योजना में 'वस्तु-ध्वनि' का अत्यंत कोमल विधान है। वह अपनी सखियों से वसंत ऋतु और कोयल की बात करती है, परंतु उसका वास्तविक व्यंग्यार्थ (छिपा हुआ अर्थ) राजा के प्रति उसका नव-अनुराग होता है। मुग्धा नायिका की जन्मजात लज्जा उसे सीधे प्रेम का इज़हार करने से रोकती है, अतः यह व्यंजना-वृत्ति ही है जो उसकी विवशता और उसके अगाध प्रेम की काव्यात्मक अभिव्यक्ति करती है। 'मणिमञ्जरी' की भाषा अत्यंत प्रांजल, वैदर्भी रीति से युक्त और माधुर्य गुण से ओतप्रोत है, जो शृंगार रस के अत्यंत अनुकूल और परिपोषक है।

9. निष्कर्ष

समग्र रूप से विवेचन, उद्धरणों के विश्लेषण और काव्यशास्त्रीय मीमांसा करने पर यह निःसंकोच और दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि पंडित विश्वेश्वर पांडेय रचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका रस-निर्मिति और भाव-व्यंजना की दृष्टि से संस्कृत वाङ्मय की एक अत्यंत उत्कृष्ट, परिपक्व और अनमोल धरोहर है।

नाटककार ने आचार्य धनंजय के दशरूपक और महर्षि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित सभी शास्त्रीय लक्षणों का अक्षरशः पालन करते हुए भी अपनी स्वतंत्र सृजनात्मक मौलिकता को कहीं भी

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

दबने नहीं दिया है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का जो सुंदर और आनुपातिक संयोजन इस कृति में हुआ है, वह नाटककार की अत्यंत गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि और काव्यशास्त्रीय प्रगल्भता का प्रत्यक्ष द्योतक है।

'मणिमञ्जरी' केवल एक राजा और एक मुग्धा नायिका के प्रेम की साधारण और कल्पित कथा मात्र नहीं है; अपितु यह मानवीय संवेदनाओं, अत्यंत उदात्त शृंगारिक भावों, भव्य वैवाहिक समारोहों की सांस्कृतिक भव्यता और शास्त्रीय रस-निष्पत्ति का एक अत्यंत सफल, जीवंत और काव्यात्मक प्रयोग है। शब्द-शक्तियों (विशेषकर व्यंजना) के सटीक प्रयोग और अंग-अंगी रसों के अत्यंत संतुलित समन्वय ने इस नाटिका को कालजयी बना दिया है। निश्चित रूप से, संस्कृत साहित्य के आधुनिक शोधकर्ताओं, साहित्य-मर्मज्ञों और रंगकर्मियों के लिए 'मणिमञ्जरी' का यह रस-विधान और भाव-व्यंजना सदैव आस्वाद्य, प्रेरणादायी और प्रासंगिक बनी रहेगी।

संदर्भ-सूची

1. र. श. मिश्र, संस्कृत नाट्य-मीमांसा, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2012, पृष्ठ 45–50.
2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्, (संपादक: डॉ. पारसनाथ द्विवेदी), वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती, 1999, पृष्ठ 250–258.
3. धनंजय, दशरूपकम्, (संपादक: श्रीनिवास शास्त्री), मेरठ: साहित्य भंडार, 2014, पृष्ठ 85–90.
4. प. विश्वेश्वर पांडेय, मणिमञ्जरी नाटिका, (संपादक: डॉ. रमाकांत शुक्ल), नई दिल्ली: देववाणी परिषद्, 2011, प्रस्तावना पृष्ठ 15–22.
5. म. का. झा, विश्वेश्वर पांडेय: व्यक्तित्व और कृतित्व, भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2016, पृष्ठ 75–82.
6. स. चतुर्वेदी, संस्कृत उपरूपक: उद्भव और विकास, दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 2010, पृष्ठ 210–215.
7. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, (संपादक: शालिग्राम शास्त्री), वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृष्ठ 175–182.
8. अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, (संपादक: डॉ. रामेश्वर दत्त), दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 310–318.
9. म. ल. दश, भारतीय सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 110–117.
10. ग. च. त्रिपाठी, शृंगार रस और संस्कृत वाङ्मय, दिल्ली: नाग पब्लिशर्स, 2016, पृष्ठ 210–218.
11. स. मिश्र, मणिमञ्जरी में संयोग और विप्रलंभ, दरभंगा: प्राच्य विद्या अनुसंधान, 2023, पृष्ठ 22–29.
12. प. के. झा, कालिदास और परवर्ती नाट्यकार, दरभंगा: कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, 2014, पृष्ठ 77–84.
13. भ. व. सिंह, मुग्धा नायिका का स्वरूप, वाराणसी: कला प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 50–58.
14. ज. कु. पांडेय, विप्रलंभ शृंगार: काव्यशास्त्रीय विवेचन, प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृष्ठ 134–140.
15. वि. सि. ठाकुर, आलंबन विभाव और रस-सिद्धांत, जयपुर: पब्लिकेशन स्कीम, 2022, पृष्ठ 120–128.

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

16. र. श. त्रिपाठी, संस्कृत काव्यों में प्रकृति और उद्दीपन, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2008, पृष्ठ 175–182.
17. प. ना. द्विवेदी, सात्त्विक भावों का शास्त्रीय विश्लेषण, वाराणसी: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, 2010, पृष्ठ 105–112.
18. ग. श. उपाध्याय, संचारी भावों का विस्तृत विवेचन, प्रयागराज: अक्षयवट प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 140–148.
19. स. त्रि. चतुर्वेदी, गौण रसों की उपयोगिता, दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 2015, पृष्ठ 120–128.
20. प. र. शुक्ल, संस्कृत नाटकों में विदूषक, नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 2019, पृष्ठ 150–158.
21. म. का. शर्मा, अद्भुत रस का शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2013, पृष्ठ 85–92.
22. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, (संपादक: आचार्य विश्वेश्वर), वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, 2005, पृष्ठ 45–52.
23. व. न. त्रिपाठी, शब्द-शक्तियों का काव्यशास्त्रीय विवेचन, दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 170–178.

© Copyright @ Authors